भारत के विभिन्न राज्यों के प्रमुख पारंपरिक पर्व एवं त्योहार

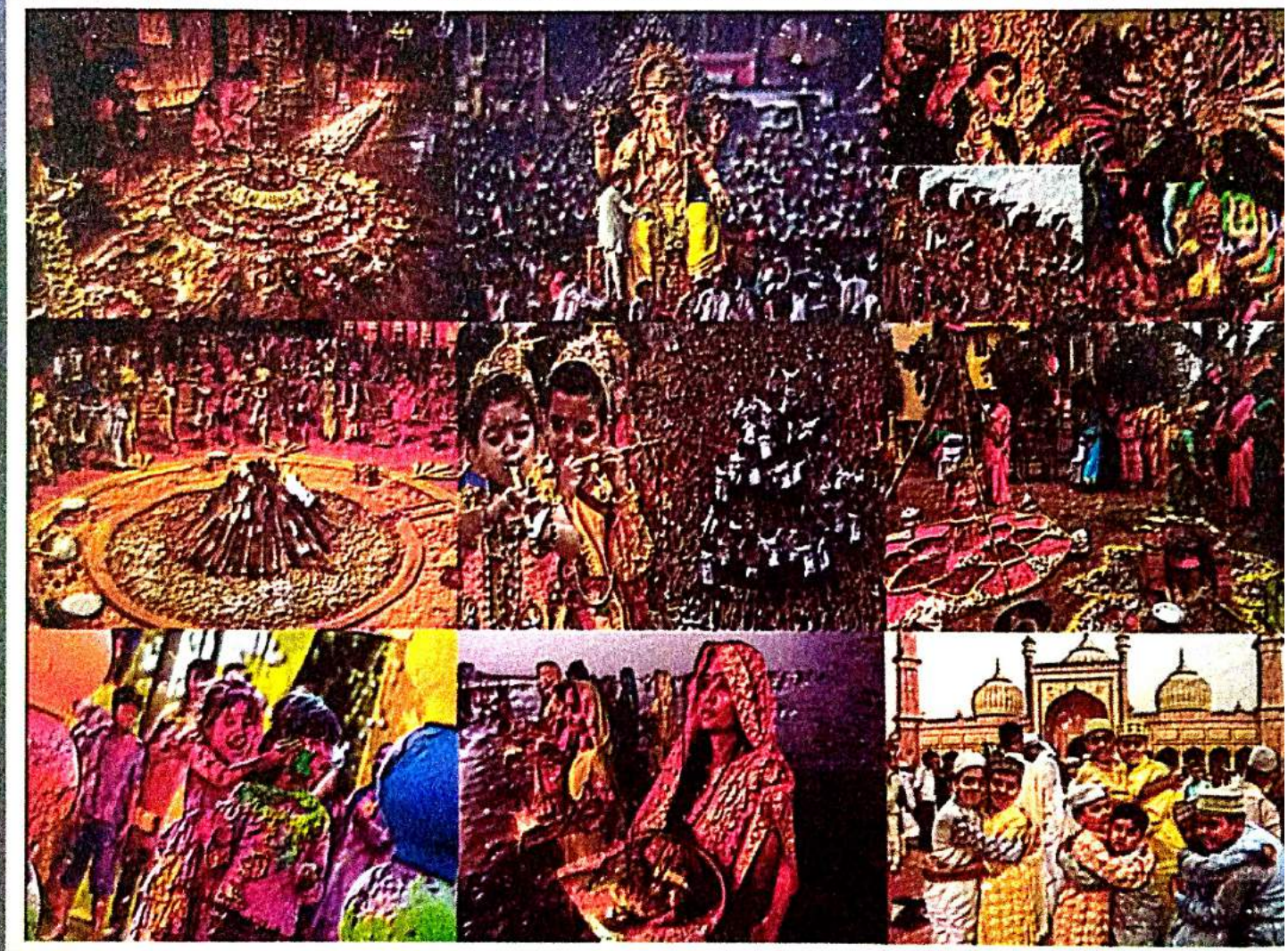

संपादक

डॉ. शशिकला

राजलक्ष्मी जायसवाल

भारत के विभिन्न राज्यों के प्रमुख पारंपरिक पर्व एवं त्योहार

संपादक

डॉ. शशिकला

राजलक्ष्मी जायसवाल

समकालीन प्रकाशन

नई दिल्ली-110002

उत्तर प्रदेश के प्रमुख व्रत एवं त्योहार : होली के विशेष संदर्भ में

-डॉ. शुभांगी श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर
वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा,
वाराणसी

सार संक्षेपण

भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न राज्यों में अनेक प्रकार के त्योहार मनाए जाते हैं। इस विशाल देश के हर प्रदेश के नागरिकों के पहनावे, रहन-सहन, खान-पान, व्रत और त्योहार सभी में भिन्नता दिखाई पड़ती है। अनेकता में एकता यहाँ की सबसे बड़ी विशेषता है। भारत की सांस्कृतिक एकता और व्रत-त्योहार इस देश को एक सूत्र में बाँधते हैं। 29 राज्यों और 8 केंद्र शासित प्रदेशों में विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, जातियों के लोग अपनी सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार व्रत और त्योहार मनाते हैं। मनुष्य स्वभाव से ही उत्सव प्रिय प्राणी है। ये पर्व और आयोजन ही हमारे जीवन में उत्साह, उल्लास, उमंग और आनंद को भरते हैं।

उत्तर प्रदेश के पर्वों की अपनी ऐतिहासिकता है। उनका पौराणिक और आध्यात्मिक महत्त्व है तथा ये हमारी सांस्कृतिक विरासत के अंग हैं। इस लेख में होली के विशेष संदर्भ में उत्तर प्रदेश के महत्त्वपूर्ण त्योहारों का विवेचन किया गया है।

मूल शब्दः- व्रत, त्योहार, मेले, संस्कृति, परंपरा, धर्म।

मूल आलेखः- उत्तर प्रदेश में लगभग 40 भव्य त्योहार और 2250 मेले लगते हैं इसलिए यह देश का सबसे रंगीन और खुशमिजाज राज्य है। यहाँ कई प्रकार के व्रत, त्योहार, मेले ईश्वरीय आस्था, समाज कल्याण की भावना, सहयोग की भावना और एकता का पोषण करते हैं। सभी त्योहारों को उत्साह और सांप्रदायिक सद्भाव के साथ मनाया जाता है। इन प्रमुख

त्योहारों में कई अनोखे मेलों और समारोहों का आयोजन किया जाता है।
"महर्षि कणाद ने व्यक्तिगत जीवन को पवित्र करने के लिए व्रत का
विधान स्वीकार किया है तथा महर्षि यास्क ने व्रत को कर्म विशेष माना
है।"[1] उत्तर प्रदेश भारत का सबसे ज्यादा जनसंख्या वाला राज्य है। देश की
सांस्कृतिक राजधानी काशी- महादेव की नगरी, अयोध्या- भगवान राम की
जन्मभूमि और मथुरा नगरी- भगवान कृष्ण की जन्मभूमि, विश्व प्रसिद्ध
महाकुंभ मेला जहाँ लगता है त्रिवेणी संगम की नगरी प्रयागराज यह सभी
प्रसिद्ध शहर उत्तर प्रदेश में है। यहाँ का हर पर्व ऊर्जा और संस्कृति से
परिपूर्ण होता है। यह अद्भुत तीर्थ स्थल और पर्यटन स्थल भी है। चाहे
वह गाँव हो या शहर सभी अपनी संस्कृति और परंपरा में डूबे हुए हैं।
अपनी जड़ों के विषय में जागरूकता प्रत्येक में गहराई से समाई हुई है
और बाहरी तौर पर उत्सव के रूप में दिखाई पड़ती है। जीवन का सबसे
अच्छा रूप यही व्रत-त्योहार और पर्व है, जिसमें परिवार, पड़ोस, समाज
सब एक साथ बिना भेदभाव के आनंद से उत्सव मनाते हैं। "भारतीय पंचांग
प्रकृति परिवर्तन, ब्रह्मांड की खगोलीय घटनाओं, ऋतु परिवर्तन के साथ
मनुष्य की परिवर्तित मनोदशाओं को ध्यान में रखकर सृजित किए गए हैं।
इनमें व्रत-त्योहार, मेलों की रचना इस प्रकार की गई है कि प्रथम दृष्टया
यह धार्मिक आस्था का प्रतीक लगते हैं। परंतु, यह सभी आध्यात्मिक
संतुष्टि के साथ ही जीवन को संतुलित रखने का वैज्ञानिक उपाय भी हैं।
इनसे यहाँ लौकिक कार्यों, अलौकिक सद्गुणों यथा दर्शन, भक्ति, श्रद्धा,
विवेक, धैर्य, संयम, दृढ़ता, समर्पण, लोकमंगल की भावना आदि के
समरूप नैतिक आदर्शों की स्थापना होती है। मानव की व्यस्त दिनचर्या में
यह नवीन स्फूर्ति लाते हैं तथा व्यक्ति को परिवार से, परिवार को समाज
से, समाज को राष्ट्र से जोड़कर अपनी परंपराओं और विरासतों का सम्मान
करना सिखाते हैं। यह लोक जीवन की सजीव प्रस्तुति करते हुए लोक की
विरासत को सहेज कर रखते हैं। इनसे लोक परंपरा ही नहीं लोक कला
का भी पोषण होता है।"[2] इतने सारे पर्व और मेलों में उत्तर प्रदेश के कुछ
महत्त्वपूर्ण त्योहार इस प्रकार हैं:-

(1) जन्माष्टमी:- भगवान कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा में जन्माष्टमी
के त्योहार को बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। प्रमुख त्योहार समारोह
द्वारकाधीश मंदिर में होते हैं। भगवान कृष्ण की जन्मस्थली मथुरा और
वृंदावन जहाँ उन्होंने अपना बचपन बिताया ये दोनों शहर समान उत्साह के
साथ इस त्योहार को मनाते हैं। इस पवित्र शहर में लगभग 400 से अधिक

मंदिर भगवान कृष्ण को समर्पित है। मंदिरों की सूची में कुछ प्रमुख मंदिर बांके बिहारी, रंगा जी, श्री कृष्ण बलराम मंदिर और गोपीनाथ मंदिर हैं। यह त्योहार मथुरा-वृंदावन के अलावा उत्तर-प्रदेश के अन्य सभी नगरों में भी ऐसे ही धूमधाम से मनाया जाता है।

(2) बुद्ध पूर्णिमा:- देश के बाकी हिस्सों में भी यह त्योहार मनाया जाता है लेकिन उत्तर प्रदेश में लोगों के लिए इसका खास महत्त्व होता है। उत्तर प्रदेश में सभी धर्मों के लोग बहुतायत में हैं। बौद्ध समुदाय उनमें से एक है और उन्हें अपने भगवान गौतम बुद्ध के जन्म को बड़े उत्साह के साथ मनाने के लिए जाने जाते हैं। यह दिन उनके लिए पूरे साल का सबसे शुभ दिन होता है।

(3) महाशिवरात्रि:- भगवान शिव की प्रिय नगरी काशी में शिवरात्रि बड़े धूमधाम से मनाई जाती है। इस दिन श्रद्धालु और भक्त मिलकर शिवजी की पूजा-अर्चना करते हैं। इसी दिन भगवान शिव और पार्वती का विवाह हुआ था। आज के दिन भक्तगण व्रत-पूजा-अर्चना करते हैं और पूरे उत्तर प्रदेश में इसे उत्सव की तरह मनाया जाता है।

(4) नवरात्रि:- दुर्गोत्सव में माँ दुर्गा, शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्र घंटा, कुष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी कालरात्रि माँ गौरी, सिद्धिदात्री की आराधना की जाती है। उत्तर प्रदेश में इस त्योहार को बड़े उत्साह से मनाया जाता है। लोग घर में देवी की प्रतिमा स्थापित करते हैं और पूरे 10 दिन हवन-पूजन करते हैं। नवरात्रि वर्ष में दो बार मनाई जाती है।

अप्रैल में वासंतिक नवरात्र मनाया जाता है और शारदीय नवरात्र अक्टूबर महीने में मनाया जाता है। जिसमें जगह-जगह माँ दुर्गा के पंडाल लगाए जाते हैं। मेले लगते हैं। कीर्तन होते हैं और रात्रि जागरण किए जाते हैं।

(5) मकर संक्रांति:- प्रत्येक वर्ष 14 जनवरी को मकर संक्रांति मनाई जाती है इस दिन पट्टी, तिल, गुड़, लाई, चूड़ा, गजक आदि मिठाइयाँ बनाई और खाई जाती है। इस दिन जमकर पतंग उड़ाते हैं और पकवान बनाते हैं। इस दिन रामदाने और तिल के लड्डू के साथ-साथ कई तरह की मिठाईयां बनती हैं। भगवान सूर्य की पूजा इस दिन विशेष रूप से की जाती है।

(6) गंगा दशहरा:- गंगा नदी के अवतरण दिवस को गंगा दशहरा मनाया जाता है। 10 दिन चलने वाले इस उत्सव में गंगा नदी के घाट पर

पूजा- अर्चना की जाती है। इसे ज्येष्ठ माह के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मनाया जाता है। इस दिन गंगा नदी में स्नान करने से सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं।

(7) रामनवमी:- भगवान राम की नगरी अयोध्या में रामनवमी को बड़े स्तर पर मनाया जाता है। इस दिन राम जी के जन्मोत्सव को लोग स्नान-ध्यान-पूजन करके पकवान आदि बनाकर तरह-तरह से मनाते हैं। यह पर्व हिंदू पंचांग के प्रथम माह चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि के दिन आता है तथा यह उत्सव चैत्र नवरात्रि के नौवें दिन के रूप में भी मनाया जाता है। श्री राम का प्राकट्य अभिजित नक्षत्र में दोपहर बारह बजे हुआ था।

राम का अर्थ है- स्वयं का प्रकाश। 'रवि' शब्द 'राम' शब्द का पर्याय है। रवि शब्द में, 'र' का अर्थ है- प्रकाश और 'वि' का अर्थ है- विशेष। अर्थात् राम हमारे हृदय एवं आत्मा के प्रकाश हैं। खुशी और उल्लास के इस त्योहार को मनाने का उद्देश्य हमारे भीतर 'ज्ञान के प्रकाश का उदय' है। भगवान राम का जन्म राजा दशरथ और रानी कौशल्या से हुआ था। हिंदू शास्त्रों के अनुसार भगवान राम का जन्म इसी दिन हुआ था और वे युगों से मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रतीक के रूप में जाने जाते हैं। भगवान विष्णु ने त्रेतायुग में रावण के अत्याचारों को समाप्त करने और धर्म की पुनः स्थापना के लिए दुनिया में श्री राम के रूप में अवतार लिया था।

इस दिन घरों में गृहणियाँ शीतला नवमी की पूजा भी करती हैं। घर की सफाई की जाती है। रात्रि में बसयुड़ा का भोजन बनाया जाता है। जिसमें हलवा, पूरी, गुलगुला चने आदि का भोग लगाया जाता है और पूजा की जाती है।

(8) रामलीला:- वाराणसी और अयोध्या में विश्व प्रसिद्ध रामलीला का मेला लगता है। कहते हैं अगर आपने काशी और अयोध्या की रामलीला नहीं देखी तो आपने असली रामायण नहीं जानी। यहाँ जगह-जगह रामलीला का आयोजन होता है। कलाकार राम-लक्ष्मण, सीता का किरदार निभाते हैं जिसे देखने के लिए विश्व के अलग-अलग हिस्सों से लोग आते हैं। लीला को तत्व विमर्श का अर्थ माना गया है 'ली' अर्थात् हृदय से लगाना एवं 'ला' अर्थात् ग्रहण करना।[3]

(9) दशहरा:- उत्तर प्रदेश में नवरात्रि के बाद दशहरे को बड़े चाव से मनाते हैं। बड़े-बड़े मैदानों में रावण का दहन किया जाता है और मेला लगता है।

(10) हरितालिका तीज:- हर वर्ष भादों मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को तीज का त्योहार और उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन विवाहित महिलाएँ अपने पति के स्वास्थ्य और लंबी आयु के लिए व्रत करती हैं। शिव-पार्वती-गणेश का पूजन करती हैं। सज-धज कर झूला झूलती और घर पर मीठे पकवान बनाती हैं। इस व्रत के संबंध में शंकर जी ने पार्वती से कहा था कि जैसे नक्षत्रों में चंद्रमा, ग्रहों में सूर्य, वर्णों में विप्र, देवों में विष्णु, नदियों में गंगा, पुराणों में महाभारत, वेदों में सामवेद तथा इंद्रियों में मन श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार सब व्रतों में हरितालिका का व्रत श्रेष्ठ है।'

(11) दीवाली:- भगवान राम के अयोध्या आने की खुशी में दीपोत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन सभी अपने घरों में और मंदिरों में दीप प्रज्वलित करके पटाखे जलाते हैं। "इस पंच दिवसीय त्योहार में प्रथम दिन स्वास्तिक की रचना करते हुए अधिकांश घरों में रंगोली का अंकन होता है। ब्रह्मनाद का प्रतीक प्रणव अक्षर माना जाता है। जिसका अंकन प्राचीन अभिलेखों में प्रथम अक्षर के रूप में भी हुआ है।"[3] यह त्योहार पंच दिवसीय होता है जो धनतेरस से शुरू होता है। इस दिन घर में गणेश-लक्ष्मी की स्थापना करके उनकी पूजा की जाती है। जिसकी जितनी सामर्थ्य होती है वैसे ही बर्तन गहने घर में खरीद कर लाए जाते हैं। इसके अगले दिन नरक चतुर्दशी के दिन छोटी दीवाली मनाई जाती है। तीसरे दिन अमावस्या को बड़ी दीवाली मनाई जाती है। रात्रि में माँ कालरात्रि का पूजन किया जाता है। इसके एक दिन बाद कायस्थ समाज में श्री चित्रगुप्त जी की पूजा की जाती है जो कि कलम-दवात की पूजा होती है और भाई-दूज का त्योहार भी इसी दिन मनाया जाता है। गोवर्धन पूजा में गाय के गोबर से चौक पूरा जाता है। कथाएँ पढ़ी जाती हैं। बहनें भाई के कुशल-मंगल के लिए इस पर्व में बड़े उत्साह से पूजा-अर्चना करती हैं। इस तरह यह पंच दिवसीय त्योहार मनाया जाता है।

(12) नाग पंचमी:- भारत एक ऐसा देश है जहाँ सजीव-निर्जीव, सगुण-निर्गुण, जीवित-मृत मनुष्य और पशु-पक्षी सभी को समान दृष्टि से देखा जाता है। सभी के प्रति कृतज्ञ भाव और सहृदयता से रहना सिखाया जाता है इसलिए त्योहारों में वृक्षों और पशु-पक्षी की पूजा की जाती है। नागपंचमी के दिन नाग-पूजन किया जाता है। हम सभी जानते हैं कि हिंदू धर्म के आराध्य देव भगवान शिव के गले में भी नाग विराजमान है जो भगवान शिव के पशु-पक्षी के प्रति प्रेम को दर्शाता है। जिसे सभी त्याज्य समझते हैं उससे डरते हैं महादेव उसे अपने कंठ में स्थान देते हैं। इस दिन

सभी घरों में पकवान बनाए जाते हैं। सर्प को दूध और धान खिलाया जाता है। बंजारे शहरों में घूमते हुए अपनी बीन के साथ सभी जगहों पर सर्प का दर्शन कराते हैं। उन्हें सामर्थ्य अनुसार लोग दान भी देते हैं।

(13) बसंत पंचमी:- यह त्योहार विद्या की देवी माँ सरस्वती की आराधना के लिए मनाया जाता है। इस दिन बच्चे पढ़ते नहीं हैं क्योंकि इस दिन पुस्तक की पूजा की जाती है। सभी श्वेत या पीला वस्त्र धारण करते हैं माँ सरस्वती की मूर्ति स्थापित कर उनकी पूजा की जाती है।

(14) देव-दीवाली:- यह पर्व दीवाली के 15 दिन बाद मनाया जाता है। इसे देवों की दीवाली कहा जाता है। इस दिन वाराणसी में घाटों पर प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा कई सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। लाखों की संख्या में दीपक जलाए जाते हैं। दीपों से सजे घाटों को देखने दूर-दूर से पर्यटक आते हैं।

(15) चैत्र पूर्णिमा:- चैत्र संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है- जब सूर्य मेष राशि में उच्च स्थिति में होता है और चंद्रमा तुला राशि में चैत्र नक्षत्र में होता है तब इसे चैत्र पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। हिंदू धर्म में पूर्णिमा का दिन शुभ माना जाता है पूर्णिमा अभिव्यक्ति और सृजन के लिए उचित समय होता है। इसे चैती पूनम भी कहा जाता है। चैत्र मास हिंदू वर्ष का पहला महीना होता है इसलिए इस दिन का विशेष महत्व माना जाता है। चैत्र पूर्णिमा के दिन भगवान सत्यनारायण की पूजा होती है। रात्रि में चंद्रमा की पूजा की जाती है।

(16) अक्षय तृतीया:- अक्षय तृतीया का अर्थ है ऐसी तिथि जिसका कभी भी क्षय नहीं होता या जो कभी समाप्त नहीं होती। इस दिन कोई स्वर्ण आभूषण क्रय करने की परंपरा है। इस दिन माता लक्ष्मी, भगवान गणेश और धनपति कुबेर की पूजा की जाती है इनके आशीर्वाद से धन, सुख और समृद्धि की प्राप्ति होती है।

(17) रक्षाबंधन:- यह त्योहार श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। यह त्योहार भाई-बहन को स्नेह की डोर में बाँधता है। इस दिन बहन अपने भाई के मस्तक पर टीका लगाकर मिठाई खिलाकर रक्षा का बंधन बाँधती है, जिसे राखी कहते हैं। हिंदू धर्म के सभी धार्मिक अनुष्ठानों में रक्षा सूत्र बाँधते समय कर्मकांडी पंडित आचार्य संस्कृत में एक श्लोक का उच्चारण करते हैं, जिसमें रक्षाबंधन का संबंध राजा बलि से स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। भविष्य पुराण के अनुसार इंद्राणी द्वारा निर्मित

रक्षासूत्र को देवगुरु बृहस्पति ने इंद्र के हाथों में बाँधते हुए निम्नलिखित श्लोकोच्चारण किया-

"येन बद्धो बलिराजा दानवेंद्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे माचल माचल।।"[6]

इस श्लोक का हिन्दी भाषार्थ है- 'जिस रक्षा सूत्र से महान शक्तिशाली दानवेंद्र राजा बलि को बाँधा गया था उसी सूत्र से मैं तुझे बाँधता हूँ। हे रक्षे (राखी)! तुम अडिग रहना (तू अपने संकल्प से कभी भी विचलित न होने देना)' रक्षाबंधन त्योहार मनाने का कोई भी प्रमाण हमारे शास्त्रों व पवित्र धर्मग्रंथों जैसे वेद, श्रीमद्भगवत गीता पुराण आदि में नहीं मिलता, यह बस एक लोक मान्यता है।

(18) हलषष्ठी:- ललही षष्ठी या हल षष्ठी का पर्व भाद्रपद कृष्ण पक्ष की षष्ठी तिथि को भगवान श्री कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है। मान्यता है कि इसी दिन भगवान बलराम का जन्म हुआ था। इस दिन माताएँ अपनी संतान के दीर्घायु और स्वास्थ्य के लिए व्रत रखती हैं। इस दिन हल से जूती हुए अनाज और सब्जियों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

(19) वट सावित्री व्रत:- यह व्रत त्योहार बरगदाई के नाम से अधिक प्रचलित है। इस व्रत में सुहागन स्त्रियाँ सुबह-सुबह स्नान आदि करके मीठा व्यंजन- गेहूँ के आटे चीनी एवं घी से तैयार करती हैं। स्त्रियाँ सोलह शृंगार करके मौसमी फल, पूड़ी, कलश में जल चावल तथा हल्दी का लेप, भीगे चने थाली में सजाकर वट अर्थात् बरगद के पेड़ की पूजा करने जाती हैं। इस अवसर पर लाल अथवा पीले धागे लेकर वट वृक्ष की 14 परिक्रमा भी करते हैं। वट वृक्ष के जड़ों पर अईपन का पंचागुल्य (हथेली से छाप) लगाते हैं। 5 अथवा 7 बार पंचागुल्य लगाकर उस पर सिंदूर से टीका करते हैं। शिव-पार्वती एवं समस्त देवी- देवताओं को नमन करते हुए सावित्री का स्मरण किया जाता है। "शास्त्रानुसार वट वृक्ष की जड़ में ब्रह्मा, धड़ में विष्णु और ऊपरी भाग में महेश का वास है। इस व्रत में सावित्री और सत्यवान की कथा सुनने का महात्म्य है, इसी कारण से इसका नाम 'वट सावित्री व्रत' पड़ा।"[7]

(20) जीवित्पुत्रिका व्रत:- यह व्रत पुत्र के लिए किया जाता है। जिसे उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश तथा बिहार में लोकप्रियता प्राप्त है। इस

व्रत में अष्टमी तिथि को निर्जला व्रत रहते हुए स्त्रियाँ नवमी तिथि लगने पर जल ग्रहण करती हैं।

(21) ऋषि पंचमी:- "भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की पंचमी को ऋषि पंचमी कहते हैं। वैसे तो इस व्रत को पुरुष भी करते हैं, किंतु अधिकांशत: स्त्रियाँ ही इसे करती हैं। इस व्रत को करने से सारे पाप दूर हो जाते हैं। यह व्रत जाने-अनजाने में किए गए पाप-कर्मों की शांति के लिए किया जाता है।"[8]

(22) अनंत चतुर्दशी:- भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि को 'अनंत चतुर्दशी' का व्रत किया जाता है। इस व्रत से मनुष्य धन-धान्य से परिपूर्ण रहता है। कच्चे सूत के डोरी में 14 गांठ देकर उसे माला जैसा बना कर विधिवत पूजा करके हल्दी में रंगकर उसे दाहिने हाथ में पहना जाता है। अनंत को पहनते समय यह मंत्र पढ़ा जाता है:-

"अनंत संसार महा समुद्रे मग्नं मयाम्युद्धरं वासुदेव।
अनंत रूपे विनियोजयस्व ह्यानंत सूभाय नमो नमस्ते।।"[9]

"भारतीय परंपरा में वर्ष पर्यंत प्रत्येक मास के पक्षधर की विशेष तिथि को त्योहारों का स्वागत संपूर्ण उल्लास और निष्कपट भावना से किया जाता है। यह धार्मिक आस्था तथा नैतिक आदर्शों की सांस्कृतिक विरासत है। यह समस्त त्योहार सामाजिक समरसता का प्रदर्शन करते हैं। राजा-रंक अथवा संभ्रांत-साधारण, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी इन त्योहारों के रंग में आनंद का प्रत्येक क्षण पूर्ण उत्साह और हर्ष से जीना चाहते हैं। यथाशक्ति तथा भक्ति अर्थात् जैसी जिसकी आर्थिक स्थिति वह उसी अनुसार यहाँ त्योहारों का स्वागत करता है। प्राचीन उत्सव अथवा समाज त्योहारों के स्वरूप थे। वैदिक काल में पर्व और उत्सव में संगीत का आयोजन होता था।"[10]

इन सब पर्वों के अलावा उत्तर प्रदेश में श्रावण झूला मेला, सोरहिया का मेला, रथयात्रा मेला, शरद पूर्णिमा, वैशाखी पूर्णिमा, गणेश चतुर्थी, गुरु नानक जयंती, गुरु पूर्णिमा आदि पर्व भी बड़े उत्साह के साथ मनाये जाते हैं। सभी पर्वों का विस्तृत विवरण देना यहाँ संभव नहीं है। उत्तर प्रदेश या कहें भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध त्योहार होली जो कि फाल्गुन मास में मनाया जाता है। जिसका वर्णन मैंने अभी तक नहीं किया। वाराणसी के संदर्भ में इस पर्व का महत्त्व इस प्रकार है:-

दुनिया की सबसे प्राचीन नगरी काशी में होली खेलने की परंपरा कुछ खास और अलग है। प्राचीन काल से काशी के वासी रंगभरी एकादशी के अगले दिन श्मशान में होली खेलते हैं। मान्यताओं के अनुसार कहा

जाता है। [illegible] एकादशी के दिन गौरा की विदाई होती है। इस दिन भगवान शिव [illegible] गौरा का गौना कराकर काशी लेकर आए थे। भारतीय लोकमानस में प्रस्तुत एकादशी आमलकी एकादशी के नाम से विख्यात है। परंतु काशी का लोक इसे रंगभरी एकादशी ही कहता है। इसके दूसरे दिन 'मसाने की होली' खेली जाती है। धार्मिक मान्यता है कि बाबा विश्वनाथ महाश्मशान पर दिगंबर रूप में अपने भक्तों के साथ होली खेलते हैं। उनकी इस होली में भूत-प्रेत, पिचास सहित सभी गण मौजूद होते हैं।

'होली खेले रघुवीरा अवध में', 'खेले मसाने में होली दिगंबर' ये प्रसिद्ध गीत इसी अवसर पर गाए जाते हैं। धर्म और संस्कृति का शहर बनारस संस्कारों के लिए जाना जाता है। त्रैलोक्य से न्यारी काशी नगरी की परंपराएँ अनूठी, प्यारी और मनोहारी है। इस धर्मनगरी में होली बाबा विश्वनाथ दरबार से शुरू होती है। भांग, पान और ठंडई की जुगलबंदी के साथ अल्हड़ मस्ती और हुल्लड़बाजी के रंगों में घुली बनारसी होली की बात ही निराली है। इस दिन सभी आपसी मतभेद को छोड़कर प्रेम से होली खेलते हैं। फाल्गुन का सुहानापन बनारस की होली में ऐसी जीवंतता भरता है कि फिजा में रंगों का बखूबी अहसास होता है। बाबा विश्वनाथ की नगरी में फगुनी बयार भारतीय संस्कृति का दर्शन कराती है। संकरी गलियों से होली की सुरीली धुन या चौराहों के होली मिलन समारोह बेजोड़ है। होली का यह सिलसिला 'बुढ़वा मंगल' तक चलता है। गंगा घाटों पर आपसी सौहार्द के बीच रंगों की खुमारी का दीदार करने देश-विदेश के सैलानी जुटते हैं। फाग के रंग और सुबह-ए-बनारस का प्रगाढ़ रिश्ता यहाँ की विविधताओं का एहसास कराता है। गुझिया, मालपुए, जलेबी और विविध मिठाइयों, नमकीनों की खुशबू के बीच रसभरी अक्खड़ मिजाजी और किसी को रंगे बिना नहीं छोड़ने वाली बनारस की होली नायाब है। होली के एक दिन पहले शहर की गलियों व नुक्कड़ों पर होलिका दहन के साथ ही युवकों की टोलियाँ फाग गाती हुई त्योहार का आनंद लेती हैं। दूसरे दिन पूरा शहर रंगोत्सव में डूब जाता है। शहर के कई क्षेत्रों से बैंड-बाजे के साथ निकलने वाली होली बारात में बकायदा दूल्हा रथ पर सवार होता है। बारात जब अपने नीयत स्थल पर पहुँचती है तो महिलाएँ परंपरागत ढंग से दूल्हे का स्वागत भी करती हैं। मंडप में दुल्हन भी आती है लेकिन वर-वधु के बीच बहस शुरू हो जाती है और दुल्हन शादी से इंकार कर देती है। बारात रात में लौट जाती है। होली वाले दिन काशी में चौसट्टी देवी और अपने आराध्य काशी पुराधिपति बाबा विश्वनाथ का

दर्शन करना नहीं भूलते। बनारस की होली में कभी अस्सी का चर्चित कवि सम्मेलन भी था। मशहूर हास्य कवि स्वर्गीय चकाचक बनारसी, पंडित धर्मशील चतुर्वेदी, सांड़ बनारसी, बद्री विशाल आदि शरीक होते थे। चकाचक के निधन के बाद अस्सी के हास्य कवि सम्मेलन पर विराम लग गया। अब इसका स्थान टाउन हॉल मैदान में होने वाले हास्य कवि सम्मेलन ने ले लिया है।

काशी में महादेव के आशीर्वाद और प्रसाद से ही हर त्योहार की शुरूआत होती है। ऐसे में होली की शुरूआत पर महादेव के चरणों में गुलाल अर्पित कर प्रिय भोग ठंडई और भाँग भी चढ़ाया जाता है। धार्मिक मान्यता है कि समुद्र मंथन से निकले विष पीते समय महादेव ने उसे अपने कंठ से नीचे नहीं उतरने दिया। समुद्र मंथन से निकला यह विष बेहद गर्म था और जब उन्होंने इसका विषपान किया तो उनके शरीर का तापमान काफी बढ़ गया। इस दौरान विष की गर्मी को कम करने के लिए महादेव ने भाँग का सेवन किया था क्योंकि भाँग को ठंडा माना जाता है। इसी के बाद भाँग को महादेव की पूजा में शामिल किया जाने लगा। होली केवल रंग, अबीर, पिचकारी और गुलाल का ही नाम नहीं है, यह फगुनहटी बयार और कवियों के कवित्त की मस्ती में भी ध्वनित होता है। फागुन और होली पर लिखी कविताओं का जायजा लिया जाए तो क्या खूब छंदों की छटाएँ मिलती हैं और क्या बांकी अदाएँ कथन की, कि मन रीझ उठे ऐसे कवियों पर। यहाँ होली के रंगों में सराबोर होने के बाद भी मन नहीं भरता तभी तो पद्माकर की एक गोपी कृष्ण पर अबीर की झोली उड़ेल कर और पूरी गत बनाकर आँखों को नचाते और मुस्कुराते हुए कहती है- "लला फिर आइयो खेलन होरी।"

फागुन की ऋतु ऐसी ही ऋतु है जब खेतों में बालियाँ पक रही होती हैं, आम में बौर आ चुके होते हैं, टिकोरे लग रहे होते, महुआ कूच रहा होता है और टपकता भी है। सुबह बाग में जाकर देखो तो लगता है जमीन पर किसी ने महुए के फूल बिछा दिए हों, उसे नबेर कर खाने का मजा ही और है। महुए टपकने की गंध पूरी आबोहवा में मह-मह बहने लगती है। कहीं-बौर-कहीं टिकोरे, सारा मौसम फागुन की उत्सवता से भीग उठता है। ऐसा ही किसी गंवई मस्ती में हरिवंश राय बच्चन ने यह गीत लिखा था:-

महुआ के नीचे मोती झरे
महुआ के
चाँदनी सुबरन

दुनिया मधुवन
उसको जिसको न पिया बिसरे
महुआ के
महुआ के नीचे मोती झरे
महुआ के
सब सुख पाएँ
सुख सरसाएँ
कोई न कभी मिलकर बिछुड़े
महुआ के
महुआ के नीचे मोती झरे
महुआ के

फागुन के कवित्त लिखने में पद्माकर का कोई सानी नहीं वे ब्रज की होली का एक मनमोहक चित्र अपने कवित्त में खींचते हैं वे लिखते हैं:-

फागु के भीर अभीरन में गहि, गोविंद लै गयी भीतर गोरी।
भायी करी मन की पद्माकर, ऊपर नायी अबीर की झोरी
छीन पितांबर कमर में, सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी
नैन नचाई कहियो मुस्क्याइ, लला फिर आइयो खेलन होरी।।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रणेता काशी के कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र तो खड़ी बोली के अधिष्ठाता हैं निर्माता हैं। हिन्दी की अनूठी पदरचना से लेकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने व खड़ी बोली को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का काम किया है पर उनका ब्रजकाव्य अपने आप में उत्तम श्रेणी का है- कृष्ण ब्रजकाव्य के केंद्र में हैं। उनका एक कवित्त देखिए:-

देखो बहियाँ मुरक मेरी ऐसी करी बरजोरी
औचक आय धरी पाछे ते लोकलाज सब छोरी
छीन झपट चटपट मोरी गागर मलि दीनी मुख रोरी,
नहीं मानत कहु बात हमारी कंचुकि को बंद खोरी
ऐई रस सदा रसि को रहीओ 'हरिचंद' यह जोरी।

कृष्ण की यह बरजोरी भी जहाँ गोपियों को रिझाती-खिझाती है, वहाँ कवियों को भी इसके वर्णन में आनंद मिलता है।

आधुनिक समय में शहरों में जहाँ आधुनिक संस्कारों की खेती होती है। पारंपरिक त्योहार के इस उत्सव में नालियों का रस परिपाक उमड़ रहा है। आज होली के हुड़दंग, अश्लील हरकतों और गंदे तथा हानिकारक

पदार्थों के प्रयोग से भयाक्रांत डरे सहमे लोगों के मनों में होली का वास्तविक अर्थ गुम हो रहा है। आज की तनाव भरी जिंदगी में तो होली का महत्त्व और बढ़ गया है इसलिए आज तो होली पहले से कहीं ज्यादा प्रिय होनी चाहिए; क्योंकि आज हर कोई व्यस्त है, हर कोई कहीं पहुँचने, कहीं जाने की जल्दी में है, सबके लक्ष्य अधूरे हैं, क्योंकि हर कोई बहुत महत्त्वाकांक्षी है, जाहिर है ऐसी जीवनशैली तनाव ही देगी। तनाव भरी इस जिंदगी में ज़रूरी है हम होली जैसे त्योहारों को वरदान समझें और टीवी, इंटरनेट और मोबाइल में उलझ कर रह गई अपनी ज़िंदगी को थोड़े उल्लास और उमंगों से सराबोर करें। वास्तव में होली आज की जीवनशैली में वैसी ही है जैसे तपते रेगिस्तान में ठंडी, शीतल बयार। होली हृदय से गुबार निकालने का भी एक जरिया है, लोग वैयक्तिक रुप से विरेचन से गुजरते हैं ताकि तनाव मुक्त हो सकें, ताजगी से ओतप्रोत हो सके। होली तो समाज का सामूहिक विरेचन है।

सच कहें तो आज भले वह काशी नहीं, वह ब्रज नहीं, वह अवध नहीं, वह बुंदेलखंड न हो पर गाँवों में आज भी त्योहारों की शुचिता बची है। रेडियो और टी वी चैनलों पर फागुन और होली के गीत बजने लगते हैं। लोकगीतों की तान में फागुन परवान चढ़ने लगता है। आधुनिक कवि रामदरश मिश्र ने फागुन पर अपने कविता संग्रह में लिखा है:-

मधु ज्वाल जगी, पौरुष हुलसा
पीड़ा का बँध गया खुल-सा
कंठों में तड़पे अल्हड़ स्वर
मधु प्यास-भरा अंतर झुलसा
वन खेत नदी पथ पनघट पर
उमड़ा फागों का मद निर्झर
उजड़ी आखों में परदेशिनी का
दूर देश आ मुस्काया।
हर-हर झर-झर में गूँज उठा फागुन आया फागुन आया।

धीरे-धीरे मनुष्य जितना आधुनिक और सभ्य हो चला है, उसका प्रकृति से रिश्ता उतना ही दूर होता जा रहा है उसने तो बस अपने गमले में कुछ गुलाब उगा लिए हैं और छत पर कुछ गुलदावदी इत्यादि उसका मधुबन तो बस यही है। पर कवियों के तो मन में ही मधुबन रचा बसा होता है। इसलिए कहा गया है कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' मन प्रसन्न हो तो यही काबा यहीं काशी यहीं बसंत और यही फागुन है।

निष्कर्ष

उत्तर प्रदेश भारत के सभी प्रमुख त्योहारों और धार्मिक अवसरों को शानदार ढंग से वैभव के साथ मनाता है और यहाँ के लोग इन पर्वों को मनाकर गर्व महसूस करते हैं। इतने भव्य तरीके से मनाए जाने वाले इन त्योहारों के जरिए इसने अपनी धार्मिक सांस्कृतिक और पारंपरिक प्रतिष्ठा और विरासत को पूरे विश्व तक पहुँचाया। ये व्रत और त्योहार हमें हमारी परंपरा संस्कृति और विरासत से जोड़ने के साथ-साथ एक नए भविष्य का निर्माण करने में भी सहायता प्रदान करते हैं। जिससे आगे आने वाली पीढ़ी अपने संस्कारों के साथ आधुनिकता को भी एक नए दृष्टिकोण से अपनाएँ और भारत को पुनः विश्वगुरु होने का दर्जा दिला सके।

सन्दर्भ :

1. प्रकाश चंद्र गंगराड़े-हिंदुओं के व्रत पर्व और तीज त्योहार, दिल्ली-हैदराबाद पृ-12
2. भानु शंकर मेहता- 'काशी की रामलीला' -काशी नगरी एवं रूप अनेक, पृ-241
3. एम. मीनाक्षी, भारतीय व्रतोत्सव, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 58
4. वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पटना, 1961 पृ. 112 दिल्ली, वाराणसी
5. एम. मीनाक्षी, भारतीय व्रतोत्सव, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 46
6. वही, पृ. 36
7. वही, पृ. 62
8. वही, पृ. 71
9. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पटना दर्शन संस्करण, 2006, पृ. 480
10. काशी के व्रत, त्योहार तथा मेले, डॉ. आभा मिश्रा पाठक, कला प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ. सं. 111

यायावर महापंडित

सम्पादक :
ओम प्रकाश पाण्डेय
नम्रता कुमारी

प्रज्ञा भारती प्रकाशन
दिल्ली-110032

राहुल सांकृत्यायन की यात्राएँ

शुभांगी श्रीवास्तव

"शास्त्र पढ़ने से आदमी की आँखें खुलती हैं लेकिन उसकी कूपमंडूकता दूर करने के लिए देशाटन भी आवश्यक है। देश और काल से परिचित होकर ही हम जान सकते हैं कि संसार में किस तरह परिवर्तन हुआ करते हैं।"
(–विस्मृत यात्री, राहुल सांकृत्यायन, पृ077)

राहुल सांकृत्यायन वृहत्त सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों वाले व्यक्ति थे। उन्होंने जब भी यात्राएँ की गहरे उद्देश्यों के साथ की। राहुल जी ने त्याज्य और विस्मृत किन्तु जीवंत संस्कृतियों जैसे किन्नौर, तिब्बत, लद्दाख जैसे दुर्गम, कष्टदायक तथा शीत मरूस्थलीय क्षेत्रों को अपनी शोध-यात्रा का लक्ष्य बनाया। वे ऐसे भूखण्डों में केवल घूमने के लिए या अनोखेपन का दर्शन करने के लिए नहीं गए वरन् वहाँ जाकर उन्होंने दुर्लभ मूल्यवान ग्रंथों की खोज की तथा पालि, तिब्बती भाषाओं से उन ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया। वहाँ के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन का अवलोकन कर रोचक भाषा में प्रस्तुत किया। राहुल जी ने स्वाभाविक रूप में यात्रा-कर्म की गंभीरता को स्थापित किया।

राहुल जी ने अपने अपूर्व, गहरे एवं व्यापक अनुभवों के आधार पर सभी घुमक्कड़ों की सहायता के लिए 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिखा। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना सन् 1949 में की और इसे सोलह अध्यायों में बाँटकर जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। घुमक्कड़ी की दृष्टि से विद्या, वय, स्वावलम्बन, शिल्प, कला, पिछड़ी जातियों, घुमक्कड़ जातियों, स्त्री घुमक्कड़ों, धर्मों, प्रेम, देशज्ञान, मृत्यु, लेखन, निरूद्देश्य घुमक्कड़ तथा स्मृतियों से संबंधों का विवेचन किया है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय 'अथातो घुमक्कड़-जिज्ञासा' के प्रथम पृष्ठ पर ही उनके व्यक्तित्व के यात्राप्रेमी पक्ष का उद्घाटन हो जाता है। वे कहते हैं- "मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता।[1] राहुल जी के अनुसार घुमक्कड़ों ने ही दुनिया को बनाया है। राहुल घुमक्कड़ी का महत्व बताते हुए महान घुमक्कड़ व्यक्तियों का उदाहरण भी देते चलते हैं जिसमें कोलम्बस, वास्कोडिगामा, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गुरू नानक, रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रभु ईसा आदि के नाम आते हैं। राहुल मोह-माया के जंजाल को तोड़कर युवक- युवतियों को घूमने का संदेश देते हैं और यात्रा के लिए साहस को सबसे महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। वे कहते हैं मनुष्य को अपने हृदय की दुर्बलता को छोड़ना पड़ेगा तभी तुम दुनिया की विजय कर सकते हो बिना पैसों के भी केवल साहस की आवश्यकता है। मृत्यु से भी डरने की आवश्यकता नहीं है। वे मानते हैं कि घुमक्कड़ों को किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करना चाहिए ना ही जाति-पाँति के आधार पर, न किसी धर्म या वर्ण के आधार पर उसे यात्रा में मिलने वाले किसी भी व्यक्ति से बिल्कुल आत्मीयता से मिलना चाहिए। उनके अनुसार- "समदर्शिता घुमक्कड़ का एकमात्र दृष्टिकोण है आत्मीयता उसके हर एक बर्ताव का सार है।"[2]

राहुल जी घुमक्कड़ी के लिए शिल्प और कला का ज्ञान भी आवश्यक मानते हैं क्योंकि यदि वह इन कलाओं में निपुण होगा तो आम लोगों से उसका अच्छा सम्बन्धस्थापित हो सकेगा और उसके आय का स्त्रोत भी बनेगा। नृत्य को आवश्यक मानते हुए वे नृत्य को दो भागों में बाँटते हैं- जननृत्य तथा उस्तादी (क्लासिकल), नृत्य। नृत्य ऐसा व्यायाम है जिसमें मन पर बलात्कार करने की आवश्यकता नहीं। उसे करते हुए आदमी को पता भी नहीं लगता है कि वह किसी शारीरिक परिश्रम का काम कर रहा है। शरीर को कर्मण्य रखने के लिए मनुष्य ने आदिकाल में नृत्य का आविष्कार किया। अथवा नृत्य के लाभ को समझा। इस प्रकार घुमक्कड़ों के लिए जन संगीत, जन-नृत्य और जन वाद्य को सीखना उन्होंने प्रथम श्रेणी में रखा है और उसके बाद उस्तादी कला को भी महत्वपूर्ण माना है। वे कहते हैं "नृत्य संगीत और वाद्य वस्तुतः कला हीं जादू है।"[3]

आगे वे कहते हैं– "जो सतत् घुमक्कड़ है और नये-नये देशों में घूमता रहता है, उसके लिए तो यात्राएँ ही इतनी सामग्री दे सकती है जिस पर

लिखने के लिए सारा जीवन पर्याप्त नहीं हो सकता।"* उनके अनुसार घुमक्कड़ी से लेखन कला का विकास होता है और यात्राओं में इतनी घटनाएँ घटित होती है कि इससे कहानी लेखन की कला का विकास भी हो सकता है। भौगोलिक और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टि से घुमक्कड़ जीवन लाभप्रद है।

राहुल ने यात्री के लिए चिकित्सा विद्या के ज्ञान को अति महत्वपूर्ण माना है। क्योंकि रोग सबसे बड़े दुःखों में आता है। रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए सबसे बड़ी सांत्वना उसका उपचार करना ही होता है। यात्रा में स्वयं के लिए एवं अन्य लोगों के लिए भी यह विद्या बहुत सहायक होती है। राहुल जी में एक खोजी मनुष्य है जो अपनी यात्राओं से अनुभव लेता है और महत्वपूर्ण चीजों को खोजता हुआ देखता हुआ चलता है।

भारतीय इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो सम्राट अशोक ने कलिंग विजय के बाद अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया और बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीलंका भेजा। सम्राट अशोक ने संपूर्णएशिया में तथा आज के सभी महाद्वीपों में भी बौद्ध धर्म का प्रचार किया। भारत के अलावा अफ़गानिस्तान, पश्चिम एशिया, मिस्र तथा यूनान में भी बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। अशोक ने अपने जीवन में कलिंग युद्ध के बाद धर्मयात्राओं को बहुत महत्व दिया। वह अभिषेक के 90वें वर्ष में बोधगया की यात्रा पर गया और अभिषेक के 20वें वर्ष में लुम्बिनी ग्राम की यात्रा की।

यात्राओं के सन्दर्भ में यदि विदेशी यात्रियों की बात करें तो ह्वेनसांग का नाम सबसे महत्वपूर्ण है। यह हर्षवर्द्धन के शासन काल में भारत आया था। उसने अपनी पुस्तक सी-यू-की में अपनी यात्रा तथा तत्कालीन भारत का विवरण दिया है। उसके वर्णनों से हर्षकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवस्था का परिचय मिलता है। माना जाता है कि सन् 629ई. में उसे एक स्वप्न में भारत जाने की प्रेरणा मिली। उसी समय तंग वंश और तुर्कों के बीच युद्ध चल रहे थे। इस कोर्ण राजा ने विदेश यात्राएं निषेध कर रखी थी। ह्वेनसांग ने वहाँ से पलायन करके अपनी यात्रा की शुरूआत की और भारत के उस समय के समाज को अपने यात्रा-वृत्तांत में जीवंत किया। ह्वेनसांग को हर्षकालीन इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है।

आधुनिक भारत के इतिहास में यात्राओं के द्वारा महान कार्य करने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी न केवल एक राजनेता थे वरन् एक यात्री भी थे। उनकी यात्राओं की शुरूआत शिक्षा-दीक्षा के लिए लन्दन जाने से हुई। लंदन में

वे बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए यूनिवर्सिटी, कॉलेज गये और वहाँ से वापस मुम्बई लौटने के बाद वकालत करने दक्षिण अफ्रीका चले गये यहाँ गांधी जी को अंग्रेजों के भारतीयों के साथ जारी भेदभाव का अनुभव हुआ और इसके खिलाफ संघर्ष को उन्होंने प्रेरित किया। गांधी जी ने 'हिंद स्वराज्य' नामक पुस्तक लिखी जिसे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से लौटते हुए लिखा था। इस प्रकार गांधी जी के व्यक्तित्व निर्माण में भी यात्राओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

भारत के इतिहास में अशोक एक महत्वपूर्ण यात्री था। विदेशी यात्रियों में ह्वेनसांग एक सांस्कृतिक यात्री के रूप में सामने आता है जिसने उस समय के भारत को अपने यात्रा वृत्तांत में सजीव किया तत्पश्चात् आधुनिक इतिहास में महात्मा गांधी का जीवन दर्शन उनके यात्राओं से निर्मित हुआ है यह हमें पता चलता है।

राहुल जी वस्तुतः एक पर्यटक, लेखक तथा लेखक पर्यटक थे। उनकी अनन्त इच्छा शक्ति और अथक परिश्रम का प्रतिफल है उनका यात्रा साहित्य। इन्हीं यात्राओं ने ही राहुल जी में आर्य समाजी, त्रिपिटकाचार्य तथा साम्यवादी व्यक्तित्व को रूपायित किया। एक इतिहासकार के रूप में वस्तुओं को देखने-परखने की शक्ति दी। राहुल सांकृत्यायन की भारतीय यात्राओं के अन्तर्गत मुख्यतया उनकी हिमालय यात्राएँ आती है जो लगाव उन्हें पर्वत से था वह अन्यत्र कहीं नहीं। उनकी भारतीय यात्राओं में महत्वपूर्ण यात्राएँ हैं- 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में', 'दार्जिलिंग परिचय', 'गढ़वाल', 'जौनसार देहरादून', कुमाऊँ हिमांचल' आदि। मेरी लद्दाख यात्रा उनकी यात्रा सम्बन्धी पहली कृति है। सन् 1926 में उन्होंने लद्दाख यात्रा की। उनकी इस यात्रा का प्रारंभ मेरठ से हुआ था और पंजाब, मुलतान, डेरागाज़ी खाँ, सीमान्त को पार करते हुए 'जोजीला' के रास्ते लद्दाख में प्रवेश किया। लाहुल एवं कुल्लू का वर्णन भी इस ग्रन्थ में हैं। उन्होंने इस खतरनाक यात्रा का वर्णन अत्यन्त खूबसूरत ढंग से चित्रित किया है। स्वयं राहुल जी ने लद्दाख के रास्ते की कठिनता को व्यक्त किया है। 'धीरे-धीरे पैरों से नापते मालूम होता था युगों में रास्ता कट रहा है। पन्द्रह हजार, सोलह हजार, सत्रह हजार, अट्ठारह हजार, फीट पर पहुँचना कहने में आसान मालूम होता है लेकिन ये हर एक हजार फीट मनुष्य और पशुओं के फेफड़े, पैरों और फट्ठों पर कितना असह्य भार, कितनी पीड़ा पैदा करते है इसका आभास भी शब्दों द्वारा चित्रित करना मुश्किल है। खर्दोड जोत अठारह हजार फीट ऊँचा है और इसे तिब्बत के कठिन जोतों में

गिना जाता है।"[5] लद्दाख यात्रा की इस कठिनता को उन्होंने अपनी आत्मकथा में व्यक्त किया है। इस यात्रा वृत्तांत में लद्दाख की सांस्कृतिक जीवनधारा एवं भौगोलिक परिस्थितियों का व्यापक परिचय मिलता है।

राहुल जी ने केवल लद्दाख की ही नहीं अपितु यात्रा में आये हुए अन्य स्थानों की भी भौगोलिक स्थिति प्राकृतिक सौन्दर्य, सभ्यता, वहाँ के लोगों की वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा तथा परम्पराओं का वर्णन किया है। मेरठ का वर्णन करते हुए मेहतर और चमार जातियों की शरीर वस्त्र सम्बन्धी सफाई पर भी प्रकाश डाला है। इन अछूत जातियों के उत्थान के पीछे ईसाई मिशनरियों का हाथ है। ईसाई पाठशाला में पढ़ने वाली लड़कियों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा- "ये सभी लड़कियाँ सिर्फ दो जातियों मेहतर और चमार की है। हिन्दू जाति की इन उपेक्षित और घृणा से देखी जाती हुई जातियों की इन लड़कियों की शरीर-वस्त्र-गृह-सम्बन्धी सफाई देखकर मेरे एक साथी ने कहा ऐसी सफाई की तो ऊँचे तबके के शिक्षित हिन्दुओं की लड़कियों में भी मिलना मुश्किल है साथ ही हर जगह हर एक चीज में सादगी और कम खर्च को सामने रखा गया है। भोजन जो कि शुद्ध, सादा, हिन्दुस्तानी होता है- लड़कियाँ स्वयं पकाती हैं। कपड़ा बुनना, टोकरी बनाना, मोजे बुनना, सिलाई आदि स्त्रियों के उपयुक्त हस्तशिल्प की भी उन्हें शिक्षा दी जाती है। अछूत जातियों को पशुता से उठाकर इस प्रकार देवता बनाने का प्रयास ईसाई भाइयों की ओर से देखकर हृदय उनके प्रति कृतज्ञता से भर जाता है।"[6] चाहे देशी हो या विदेशी अच्छी बातों की प्रशंसा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं। राहुल जी का यह व्यक्तित्व अत्यन्त सराहनीय है।

'किन्नर देश में' सर्वप्रथम इण्डिया पब्लिशर्स, प्रयाग द्वारा सन् 1948 ई0 में प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखक की सन् 1948 ई0 के मई-अगस्त में की गयी यात्रा का वर्णन है। श्री जगदीश शर्मा ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है- "किन्नर देश ही एक यात्रा सर्वमान्य है।"[7] यह कथन सही है कि यात्रा वर्णन के साथ हिमालय के उस उपेक्षित भाग का परिचय भी दिया था। इस यात्रा में उन्होंने नवीन भारत को नवनिर्माण की दृष्टि से वस्तुओं को देखा-परखा है। "किन्नर देश में" का आरम्भ जिस वाक्य से हुआ है वह है- "किन्नर या किंपुरुश देवयोनि है।"[8] अर्थात् उन्होंने किन्नर देश को देवताओं का देश कहा है। वहाँ सेब, अंगूर, बादाम, आलूचा, बेमी आदि फलों एवं मेवों को उपजाया जाता है। इस ग्रन्थ में उन्होंने यही संकेत दिया है कि ये सारी चीजें यदि अन्य

देशों को निर्यात की जाय तो किन्नर आर्थिक दृष्टि से आगे हो जायेंगे। ये फल किन-किन स्थानों पर होते हैं? किस महीने में पकते हैं इसकी चर्चा इस कृति में विस्तार में की गई है। वहाँ ताँबा, सुरमा, चाँदी, सीसा, मिट्टी का तेल आदि पाए जाने की सम्भावना भी इस पुस्तक में दर्ज है। इन सभी के साथ वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं भौगोलिक परिस्थिति का वर्णन भी इस कृति में देखने को मिलता है।

हिमालय के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण राहुल जी ने हिमालय के विभिन्न प्रान्तों की रचना की। दार्जिलिंग के इतिहास और विभिन्न कालखण्डों में इसकी स्थिति का उल्लेख करते हुए सन् 1950 में 'दार्जिलिङ् परिचय' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इस कृति के सम्बन्ध में उनका कथन है- 'दार्जिलिङ् परिचय' में मैंने स्थानीय इतिवृत्त, भूगोलादि के साथ पथ प्रदर्शन की बातें भी शामिल कर दी है। तेरह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक का प्रारंभ वहाँ के प्राकृतिक रूप से ही होता है। "नागाधिराज हिमालय विश्व की सुन्दरतम् गिरिमाला है। प्रकृति ने मानों अपने सारे सौन्दर्य को हिमाचल भूमि को प्रदान कर दिया है। हिमालय की सुशमा सभी जगह एक सी नहीं है, उसमें वैचित्र्य पाया जाता हैं अलमोड़ा, नैनीताल के हिमालय का दृश्य दूसरा है, किन्नर का उससे भिन्न है, दार्जिलिंग अपना पृथक सौन्दर्य रखता है।"[10] यहाँ राहुल जी ने हिमालय के हर एक प्रान्त के सौन्दर्य के बारे में बताया है।

पहाड़ी जिन्दगी के प्रति आत्मीयतापूर्ण लगाव के कारण उन्होंने गढ़वाल का लेखन कार्य सम्पन्न किया। यह कृति सन् 1953 ई0 में प्रकाशित हुई। गढ़वाल के बनावट के सम्बन्ध में यहाँ उल्लेख किया गया है। गढ़वाल का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है- "गढ़वाल का सर्वोच्च भाग सदा हिमाच्छादित रहता है जो सारे क्षेत्रफल के एक तिहाई के करीब है। यही वह स्थान है, जहाँ कोई प्राणी या वनस्पति नहीं दीखते और जहाँ प्राचीन काल से सजीव देवताओं का निवास माना जाता है।"[11] राहुल जी की राय में औद्योगिकरण की सारी संभावनाएँ होने पर भी 'गढ़वाल' भारत के अन्य प्रान्तों की तरह शीश प्रधान देश है। शिल्प-उद्योग एवं व्यापार सम्बन्धी विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। यातायात का उल्लेख भी किया गया है। पहाड़ी प्रदेश होने कारण सड़कों का बनवाना मुश्किल है, फिर भी आवश्यकता है। यातायात की सुविधा के लिये राहुल जी ने अनेक सुझाव दिये थे। वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में भी विस्तार से बताया गया है। गढ़वाल जाने के लिए यात्रियों को जो तैयारी

होनी चाहिए उस पर भी प्रकाश डाला गया है। मानसरोवर एवं बदरी, केदार यात्रा का सुन्दर वर्णन भी इसमें है।

हिमालय पर लिखी गयी राहुल जी की चौथी पुस्तक है 'जौनसार देहरादून' जो सन् 1955 ई० में प्रकाशित है। राहुल जी के शब्दों में- "जौनसार देहरादून जिले के बारे में सारी बातें बतलाता है, जो इस पुस्तक के देखने से मालूम होगा।"[1] राहुल जी का यह कथन सच है, देहरादून जिले के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक ज्ञान देने में यह कृति सफल है। भौगोलिक परिस्थितियों एवं प्राकृतिक सुन्दरता का वर्णन करते हुए इसका प्रारंभ होता है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर ब्रिटिश शासन और भारत के गणराज्य बनने के बाद के देहरादून के इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है। बहुपति विवाह प्रथा का उल्लेख भी उन्होंने किया। सभी भाइयों की सम्मिलित पत्नी होती है।

इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है- "पत्नी पर बड़े भाई का सबसे अधिक अधिकार है। पति 'खावन्द' कहे जाते हैं। बच्चे भी अपनी माँ के सभी पतियों को बाबा (पिता) कहते हैं; उनमें भेद करने के लिए उनके काम होते है, जैसे- बकरियों में जाने वाला बकरावा बाबा, भेड़ चराने वाला भेड़वा बाबा, गाय चराने वाला गायर बाबा, भैंस चराने वाला मोहावा बाबा।"[2] तिब्बत में इस प्रकार की पाण्डव विवाह प्रथा होने पर भी वहाँ स्त्रियों का स्थान पुरूषों से ऊँचा है। लेकिन देहरादून की स्त्रियाँ उतना स्वतंत्र नहीं है। इस प्रकार देहरादून का पूरा विवरण देने के साथ मसूरी का परिचयात्मक इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है। राहुल जी की तिब्बत यात्राएँ सर्वाधिक रोमांचक यात्राएँ मानी जाती है। बौद्ध संस्कृति के तिब्बती स्वरूप, लामाओं की परम्परा, तिब्बती चित्रकला के विविधा आयाम आदि के शब्दों द्वारा अंकित करने में वे सफल हुए हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बीसवीं सदी में भारत के घुमक्कड़राज बने राहुल सांकृत्यायन ने देश-विदेश की जितनी यात्राएँ की और जितना यात्रा साहित्य लिखा उतना उनके पहले या बाद में अन्य यायावरों के लिए संभव नहीं हुआ। उनके पैरों में ऐसी जिजीविशा थी जो उन्हें निरन्तर यात्रा के लिए प्रेरित करती रही और आगे आने वाली पीढ़ी को भी सदैव प्रेरित करती रहेगी।

संन्दर्भ ग्रन्थ-

1. राहुल सांकृत्यायन, *घुमक्कड़ शास्त्र*, पृ01
2. वही, पृ0 27

वहीं, पृ0 35
3. वहीं
4. कमला सांकृत्यायन (सं0); *राहुल वांग्मय, खण्ड-1, मेरी जीवन यात्रा,*
5. जिल्द-1, पृ0 291
राहुल सांस्कृत्यायन, *मेरी लद्दाख यात्रा,* पृ03
6. जगदीशमा (सं0); *राहुल को हिमाचल का प्रणाम,* पृ0 113
7. राहुल सांकृत्यायन, *किन्नर देश में,* पृ01
8. राहुल सांकृत्यायन, *दार्जिलिंग, परिचय,* भूमिका से
9. राहुल सांकृत्यायन, *दार्जिलिंग, परिचय,* पृ01
10. राहुल सांकृत्यायन, *गढ़वाल,* पृ05
11. राहुल सांकृत्यायन, *जौनसार,* देहरादून, भूमिका से
12. राहुल सांकृत्यायन, *जौनसार,* देहरादून, पृ0 92
13.

—हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मो0 8400319933
e-mail : ss044337@gmail.com

□□□

यायावर महापंडित

संपादक : डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय
डॉ. नम्रता कुमारी